भगत सिंह के नाम पर सुनियोजित षडयंत्र

(भगत सिंह के जन्मदिवस के अवसर पर)

'मैं नास्तिक क्यों हूँ ? अमर बलिदानी भगत सिंह की यह छोटी सी पुस्तक वामपंथी, साम्यवादी लाबी द्वारा आजकल नौजवानों में खासी प्रचारित की जा रही है, जिसका उद्देश्य उन्हें भगत सिंह के जैसा महान बनाना नहीं अपितु उनमें नास्तिकता को बढ़ावा देना है। कुछ लोग इसे कन्धा भगत सिंह का और निशाना कोई और भी कह सकते हैं। मेरा एक प्रश्न उनसे यह है की क्या भगत सिंह इसलिए हमारे आदर्श होने चाहिए कि वे नास्तिक थे, अथवा इसलिए कि वे एक प्रखर देशभक्त और अपने सिद्धान्तों से किसी भी कीमत पर समझौता न करने वाले बलिदानी थे ?

सभी कहेंगे कि इसलिए कि वे देशभक्त थे। भगतसिंह के जो प्रत्यक्ष योगदान है उसके कारण भारतीय स्वतंत्रता के संघर्ष में उनका कद इतना उच्च है कि उन पर अन्य कोई संदिग्ध विचार धारा थोपना कतई आवश्यक नहीं है। इस प्रकार के छद्म प्रोपगंडा से भावुक एवं अपरिपक्व नौजवानों को भगतसिंह के समग्र व्यक्तित्व से अनभिज्ञ रखकर अपने राजनीतिक उद्देश्य तो पूरे किये जा सकते हैं, भगतसिंह के आदर्शों का समाज नहीं बनाया जा सकता। किसी भी क्रांतिकारी की देशभक्ति के अलावा उनकी अध्यात्मिक विचारधारा अगर हमारे लिए आदर्श है तब तो भगत सिंह के अग्रज महान कवि एवं लेखक, भगत सिंह जैसे अनेक युवाओं के मार्ग द्रष्टा, जिनके जीवन में क्रांति का सूत्र पात स्वामी दयानंद द्वारा रचित अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश को पढने से हुआ था, कट्टर आर्यसमाजी, पंडित राम प्रसाद बिस्मिल जी जिनका सम्पूर्ण जीवन ब्रह्मचर्य पालन से होने वाले लाभ का साक्षात् प्रमाण था, क्यों हमारे लिए आदर्श और वरण करने योग्य नहीं हो सकते ?

क्रान्तिकारी सुखदेव थापर वेदों से अत्यंत प्रभावित एवं आस्तिक थे एवं संयम विज्ञान में उनकी आस्था थी। स्वयं भगत सिंह ने अपने पत्रों में उनकी इस भावना का वर्णन किया है। हमारे लिए आदर्श क्यों नहीं हो सकते ?

'आर्यसमाज मेरी माता के समान है और वैदिक धर्म मेरे लिए पिता तुल्य है। ऐसा उद्घोष करने वाले लाला लाजपतराय जिन्होंने जमीनी स्तर पर किसान आन्दोलन का नेतृत्व करने से लेकर उच्च बौद्धिक वर्ग तक में प्रखरता के साथ देशभक्ति की अलख जगाई और साइमन कमीशन का विरोध करते हुए अपने प्राण न्योछावर कर दिए। वे क्यों हमारे लिए वरणीय नहीं हो सकते ? क्या इसलिए कि वे आस्तिक थे ? वस्तुत: : देशभक्त लोगों के प्रति श्रद्धा और सम्मान रखने के लिए यह एक पर्याप्त आधार है कि वे सच्चे देशभक्त थे और उन्होंने देश की भलाई के लिए अपने व्यक्तिगत स्वार्थों और सपनों सहित अपने जीवन का बलिदान कर दिया, इससे उनके सम्मान में कोई कमी या वृद्धि नहीं होती कि उनकी आध्यात्मिक विचारधारा क्या थी। रामप्रसाद के बलिदान का सम्मान करने के साथ अशफाक के बलिदान का केवल इस आधार पर अवमूल्यन करना कि वे इस्लाम से सम्बंधित थे, केवल मूर्खता ही कही जाएगी।

ऐसे हजारों क्रांतिकारियों का विवरण दिया जा सकता है जिन्होंने न केवल मातृभूमि की सेवा में अपने प्राण न्योछावर किये थे अपितु मान्यता से वे सब दृढ़ रूप से आस्तिक भी थे। क्या उनकी बलिदान और भगत सिंह के बलिदान में कुछ अंतर हैं ? नहीं। फिर यह अन्याय नहीं तो और क्या है ?

अब यह भी विचार कर लेना चाहिए कि भगत सिंह की नास्तिकता क्या वाकई में नास्तिकता है ? भगत सिंह शहादत के समय एक 23 वर्ष के युवक ही थे। उस काल में 1920 के दशक में भारत के ऊपर दो प्रकार की विपत्तियाँ थीं। 1921 में परवान चढ़े खिलाफत के मुद्दे को कमाल पाशा द्वारा समाप्त किये जाने पर कांग्रेस एवं मुस्लिम संगठनों की हिन्दू-मुस्लिम एकता ताश के पत्तों के समान उड़ गई और सम्पूर्ण भारत में दंगों का जोर आरंभ हो गया।

हिन्दू मुस्लिम के इस संघर्ष को भगत सिंह द्वारा आज़ादी की लड़ाई में सबसे बड़ी अड़चन के रूप में महसूस किया गया, जबकि इन दंगों के पीछे अंग्रेजों की फूट डालो और राज करो की नीति थी। इस विचार मंथन का परिणाम यह निकला कि भगत सिंह को "धर्म" नामक शब्द से घृणा हो गई। उन्होंने सोचा कि दंगों का मुख्य कारण धर्म है। उनकी इस मान्यता को दिशा देने में मार्क्सवादी साहित्य का भी योगदान था, जिसका उस काल में वे अध्ययन कर रहे थे। दरअसल धर्म दंगों का कारण ही नहीं था, दंगों का कारण मत-मतान्तर की संकीर्ण सोच थी। धर्म पुरुषार्थ रूपी श्रेष्ठ कार्य करने का नाम है, जो सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक है। जबकि मत या मज़हब एक सीमित विचारधारा को मानने के समान हैं, जो न केवल अल्पकालिक हैं अपितु पूर्वाग्रह से युक्त भी हैं। उसमें उसके प्रवर्तक का सन्देश अंतिम सत्य होता है। मार्क्सवादी साहित्य की सबसे बड़ी कमजोरी उसका धर्म और मज़हब शब्द में अंतर न कर पाना है।

उस काल में अंग्रेजों की विनाशकारी नीतियों के कारण भारत देश में गरीबी अपनी चरम सीमा पर थी और अकाल, बाढ़, भूकंप, प्लेग आदि के प्रकोप के समय उचित व्यवस्था न कर पाने के कारण थोड़ी सी समस्या भी विकराल रूप धारण कर लेती थी। ऐसे में चारों ओर गरीबी, भुखमरी, बीमारियाँ आदि देखकर एक देशभक्त युवा का निर्मल ह्रदय का व्यथित हो जाना स्वाभाविक है। परन्तु इस प्रकोप का श्रेय अंग्रेजी राज्य, आपसी फूट, शिक्षा एवं रोजगार का अभाव, अन्धविश्वास आदि को न देकर ईश्वर को देना कठिन विषय में अंतिम परिणाम तक पहुँचने से पहले की शीघ्रता के समान है। दुर्भाग्य से भगत सिंह जी को केवल 23 वर्ष की आयु में देश पर अपने प्राण न्योछावर करने पड़े, वरना कुछ और काल में विचारों में प्रगति होने पर उनका ऐसा मानना कि संसार में दुखों का होना इस बात को सिद्ध करता है कि ईश्वर नाम की कोई सत्ता नहीं हैं, वे स्वयं ही अस्वीकृत कर देते।

संसार में दुःख का कारण ईश्वर नहीं अपितु मनुष्य स्वयं हैं। ईश्वर ने तो मनुष्य के निर्माण के साथ ही उसे वेद रूपी उपदेश में यह बता दिया कि उसे क्या करना है और क्या नहीं करना है ? अर्थात् मनुष्य को सत्य-असत्य का बोध करवा दिया था। अब यह मनुष्य का कर्तव्य है कि वो सत्य मार्ग का वरण करे और असत्य मार्ग का त्याग करे। पर यदि मनुष्य अपनी अज्ञानता से असत्य मार्ग का वरण करता है तो आध्यात्मिक, आधिभौतिक एवं आधिदैविक तीनों प्रकार के दुखों का भागी बनता है। अपने सामर्थ्य के अनुसार कर्म करने में मनुष्य स्वतंत्र है- यह निश्चित सिद्धांत है मगर उसके कर्मों का यथायोग्य फल मिलना भी उसी प्रकार से निश्चित सिद्धांत है। जिस प्रकार से एक छात्र परीक्षा में अत्यंत परिश्रम करता

है उसका फल अच्छे अंकों से पास होना निश्चित है, उसी प्रकार से दूसरा छात्र परिश्रम न करने के कारण फेल होता हैं तो उसका दोष ईश्वर का हुआ अथवा उसका हुआ। ऐसी व्यवस्था संसार के किस कर्म को करने में नहीं हैं ? सकल कर्मों में हैं और यही ईश्वर की कर्मफल व्यवस्था है। फिर किसी भी प्रकार के दु:ख का श्रेय ईश्वर को देना और उसके पीछे ईश्वर की सत्ता को नकारना निश्चित रूप से गलत फैसला है।

भगत सिंह की नास्तिकता वह नास्तिकता नहीं है जिसे आज के वामपंथी गाते हैं। यह एक 23 वर्ष के जोशीले, देशभक्त नौजवान युवक की क्षणिक प्रतिक्रिया मात्र है, व्यवस्था के प्रति आक्रोश है। भगतसिंह की जीवन शैली, उनकी पारिवारिक और शैक्षणिक पृष्ठभूमि और सबसे बढकर उनके जीवन-शैली से सिद्ध होता है कि किसी भी आस्तिक से आस्तिकता में कमतर नहीं थे। वे परोपकार रूपी धर्म से कभी अलग नहीं हुए, चाहे उन्हें इसके लिए कितनी भी हानि उठानी पड़ी। महर्षि दयानन्द ने इस परोपकार रूपी ईश्वराज्ञा का पालन करना ही धर्म माना है और साथ ही यह भी कहा है कि इस मनुष्य रूपी धर्म से प्राणों का संकट आ जाने पर भी पृथक न होवे। भगतसिंह का पूरा जीवन इसी धर्म के पालन का ज्वलंत उदाहरण है। इसलिए उनकी आस्तिकता का स्तर किसी भी तरह से कम नहीं आंका जा सकता।

मेरा इस विषय को यहाँ उठाने का मंतव्य यह स्पष्ट करना है की भारत माँ के चरणों में आहुति देने वाला हर क्रांतिकारी हमारे लिए महान और आदर्श है। उनकी वीरता और देश सेवा हमारे लिए वरणीय है। भगत सिंह की क्रांतिकारी विचारधारा और देशभक्ति का श्रेय नास्तिकता को नहीं अपितु उनके पूर्वजों द्वारा माँ के दूध में पिलाई गयी देश भक्ति की लोरियां हैं, जिनका श्रेय स्वामी दयानंद, करतार सिंह सराभा, भाई परमानन्द, लाला लाजपतराय, प्रोफेसर जयदेव विद्यालंकार, भगत सिंह के दादा आर्यसमाजी सरदार अर्जुन सिंह और उनके परिवार के अन्य सदस्य, सिख गुरुओं की बलिदान की गाथाओं को जाता है, जिनसे प्रेरणा की घुट्टी उन्हें बचपन से मिली थी और जो निश्चित रूप से आस्तिक थे।

भगत सिंह की महानता को नास्तिकता के तराजू में तोलना साम्यवादी लेखकों द्वारा शहीद भगत सिंह के साथ अन्याय के समान है। वैसे साम्यवादी लेखकों की दोगली मानसिकता के दर्शन हमें तब भी होते हैं जब वे भगत सिंह द्वारा गोरक्षा के लिए हुए कुका आंदोलन एवं वंदे मातरम के आज़ादी के उद्घोष के समर्थन में उनके द्वारा लिखे हुए साहित्य कि अनदेखी इसलिए करते हैं क्योंकि यह उनकी पार्टी के एजेंडे के विरुद्ध जाता हैं। प्रबुद्ध पाठक स्वयं इस आशय को समझ सकते हैं।

(लेखक राष्ट्रवादी व अध्यात्मिक विषयों पर लिखते हैं)